International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 6 Issue 6, September-October 2022 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

हिंदी काव्य परम्परा में स्त्री का बदला स्वरूप

डॉ. प्रेमलता सैनी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, अग्रवाल पी. जी. महाविद्यालय, जयपुर

सार

वक्त के साथ सोच और भारत में स्त्रियों की स्थिति में बहुत बदलाव हुए हैं। आज जहाँ नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, वहीं किसी-किसी क्षेत्र में तो पुरूषों को पीछे छोड़ती भी नजर आ रही हैं। पुरुष प्रधान समाज में प्राचीन काल से ही नारी कई रूढ़िवादी परम्पराओं की बेड़ियों में बंधी रही है। जो आज कम जरूर हुई हैं परन्तु खत्म नहीं। कल भी नारी पर ही उंगली उठती थी और आज भी कटघरे में नारी ही खड़ी रहती है। चुनौतियां खत्म नहीं हो रही बल्कि बदलते परिदृश्य में नए नए रूपों में सामने खड़ी हो रही हैं।

ये भी कटु सत्य है कि वक्त चाहे कितना भी बदल जाए लेकिन औरत को अपने हक के लिए पहले खुद को साबित ही करना पड़ा है। रामायण में जहाँ सीता के चरित्र पर ही उंगली उठी, राम पर नहीं। सीता को ही अग्नि परीक्षा देनी पड़ी थी और धरा में समाकर खुद को पवित्र साबित करना पड़ा। महाभारत में भी द्रौपदी को भी दांव पर लगा दिया गया, बिना उनकी मर्ज़ी के। क्योंकि शायद औरत होने के कारण उनसे उनकी मर्ज़ी जानना जरूरी नहीं समझा गया। आज भी वक्त जरूर बदला है, नारी की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार हुई है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि नारी की क्षमता पर आज भी सवाल खड़े किए जाते हैं। जिसका एक ताज़ा उदाहरण है अभी हाल में 17 वर्षों से चल रही लंबी कानूनी लड़ाई के बाद महिलाओं को सेना में बराबरी का हक मिला है। इस कानूनी लड़ाई में विपक्ष की ओर से दलील में महिलाओं की शारीरिक, मानसिक क्षमताओं पर सवाल उठाए गए थे। जिसके जवाब में सुप्रीम कोर्ट ने कहा भी कि सरकार अपनी मानसिकता बदले। हम महिलाओं पर एहसान नहीं कर रहे, उन्हें उनका हक दे रहे हैं। अजीब बात है न ! नारी की क्षमता पर ही सवाल क्यों? सुप्रीम कोर्ट द्वारा मिली इस जीत ने ये तो जरूर साबित कर दिया कि महिलाओं को कमजोर समझने वाली मानसिकता में अब बदलाव लाने की जरूरत है।

How to cite this paper: Dr. Premlata Saini "Changed Form of Woman in Hindi Poetry Tradition" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-6 | Issue-6, October 2022, pp.315-325, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd51864.pdf

IJTSRD51864

Copyright © 2022 by author(s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

आज नारीशक्ति ने लगभग हर क्षेत्र में अपना परचम लहराया है। सिर्फ घर की ही शोभा बनकर आज नारी नहीं रह गई है, जिस भी क्षेत्र में काम करती हैं अपनी निष्ठा पूर्वक काम करने के तरीके से, अपनी मेहनत से खुद की अलग पहचान बनाने में कामयाब हुई हैं। आईएमएफ जैसी संस्था की चीफ भी बनकर नारी ने दिखाया दिया है कि कोई भी क्षेत्र या कार्य उनसे अछूता नहीं है। बैंक, रेलवे, टीचिंग जैसे क्षेत्रों में सेवा देकर अपनी पहचान बना चुकी हैं वहीं अब खेल के क्षेत्र में भी अपना दमखम दिखाया है। एवरेस्ट की चोटी पर भी फतह करने वाली नारी की शारीरिक क्षमता पर सवाल उठाया जाना कितना सही है! जो स्त्री 25-30 वर्षों तक अपने घर रहकर जब शादी कर दूसरे के घर जाती है तो उस परिवार को भी अपना बनाने का प्रयास करती है। जो स्त्री दूसरे परिवार में खुद को शामिल कर लेती है, उन्हें अपना बना लेती है, उनकी मानसिक क्षमता पर सवाल उठना क्या सही है?[1]

नारी मां बनकर अपनी जिम्मेदारियां संभालती हैं तो पत्नी बनकर अपना धर्म भी निभाती हैं। बेटी बनकर घर की शोभा बढ़ाती हैं तो बहन बनकर साथ भी निभाती हैं और जब जरूरत पड़ती है तो यही नारी शस्त्र भी उठाती हैं। अगर नारी ने हाथ में चूड़ी, गले में मंगलसूत्र और मांग पर सिंदूर लगा कर अपने संस्कारों का परिचय देती हैं तो यही नारी रानी लक्ष्मीबाई बनकर अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए तलवार भी उठाती हैं। सावित्री बनकर यमराज से पति के प्राण भी वापस मांगकर लाने की क्षमता रखती हैं। अगर नारी की सहनशक्ति धरा स्वरूप है तो यही नारी जरूरत पड़ने पर चंडी का भी रूप धारण करती है।[2,3]

इस पुरुष प्रधान समाज ने कई तरह के कुरीतियों और अंधविश्वासों को संस्कार और परम्परा का नाम देकर महिलाओं को हमेशा से ही जंजीरों में बांधे रखने की कोशिश की है। जैसे – जैसे महिलाएं शिक्षित होती गईं खुद को इन जंजीरों से तोड़कर बाहर निकालने में सफल हुई हैं। लेकिन आज के दौर में भी कई परम्पराओं की बेड़ियों से बंधी महिलाएं, अंधविश्वास को आस्था का नाम देती नजर आती हैं। परन्तु वक्त में काफी हद तक बदलाव हुए हैं और होते भी रहेंगे। महिलाएं हर क्षेत्र में खुद को साबित कर

चुकी हैं और अपना परचम भी लहरा रही हैं और लहराती रहेंगी।

इस धरती पर कुदरत ने स्त्री और पुरुष दोनों को एक समान बुद्धि, शक्ति और सामर्थ्य के साथ पैदा किया है। जीवन रूपी गाड़ी को आगे बढ़ाने में दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय दर्शन में जहाँ पुरुषों को आय एवं रक्षा का माध्यम माना गया है वहीं नारी को दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भारतीय समाज में स्त्रियों को सदा पुरुषों से कमतर आँका गया। अबला, कमजोर और निर्बल कहकर उसका उपहास उड़ाया गया। एक तरफ उसे देवी का दर्जा दिया गया तो, दूसरी तरफ उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। परंपरा और धर्म का सहारा लेकर पितृसत्तात्मक समाज ने उसे बेड़ियों में जकड़ कर रखा। धीरे-धीरे नारी की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। पुरुषों द्वारा नारी को उसके कोमल गुणों- दया, ममता, विश्वास, श्रद्धा आदि की आड़ में छला जाने लगा। रक्षा की आड़ में पितृसत्तात्मक समाज ने महिलाओं के अधिकारों को सीमित कर उन्हें पूरी तरह से पुरुषों पर आश्रित कर दिया। परिणामतः समाज में स्त्रियों की स्थिति और भी भयावह होती चली गयी।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हेतु वैश्विक स्तर पर अनेक आंदोलन किए गये, जिनमें स्वयं महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिये बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और स्त्रीयों के उत्थान हेतु कई कदम भी उठाये। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षित व सक्षम महिलाओं के दृष्टिकोण में बदलाव आया। वे परिवार व समाज में अपनी भूमिका को लेकर शारीरिक व मानसिक रूप से संघर्ष करती रहीं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद स्त्रियों के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में डॉ॰ वीरेंद्र सिंह लिखते हैं- "एक ओर जहाँ परिवार का परंपरागत स्वरूप टूटा, वहीं दूसरी ओर स्त्री स्वतंत्रता के कारण नवयुवक स्त्रियों के स्वरूप में परिवर्तन आया। जो स्त्रियाँ आजीविका के साधन स्वयं जुटाती थीं उनकी मानसिकता में धीरे-धीरे व्यापक परिवर्तन आया और इस प्रकार उन्होंने जीवन और चिंतन के स्तर पर पुरुषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने की कोशिश की"। स्पष्ट है कि देवी की उपाधि के बंधन को तोड़ती आज की बहुमुखी प्रतिभाशाली 'स्त्री' सतत संघर्ष का परिणाम है। जहाँ उसने स्वयं को पुरुष आलंबन से मुक्त एक स्वतंत्र अस्तित्व माना है।

21वीं सदी में स्त्रियों ने सफलता के विभिन्न आयामों को छुआ है। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कामयाबी का परचम लहराते हुए पुरुषों के समकक्ष खड़ी ही नहीं बल्कि उनके वर्चस्व को भी चुनौती दे रही हैं। अपनी मेहनत के बल पर उसने स्वयं का एक अलग अस्तित्व व पहचान कायम की है। आज की स्त्री परंपरा के खोल को तोड़ कर नए-नए आयाम स्थापित करने में जुटी है। वे अब परंपरा व रीति-रिवाज के नाम पर किसी भी प्रकार का शोषण, दमन व अत्याचार सहन नहीं करती बल्कि अन्याय के खिलाफ पूरी ताकत के साथ संघर्ष करने को तत्पर है। आज की जागरूक स्त्री दूसरी स्त्रियों को भी जागरूक करने को तत्पर है। उसकी लज्जा, शर्म, सहनशीलता का स्थान उसके अस्तित्व के होने की जद्दोजहद ने ली। इस बदलते हुए परिदृश्य में हमारे युवा कहानीकारों ने स्त्री जिजीविषा के बदलते तेवर को अपनी कहानियों में रेखांकित किया और बदलते समय, परिवेश, परिस्थितियों व वातावरण के आधार पर स्त्रियों की बदलती छवियों को विश्लेषित किया है।[4,5]

वर्तमान हिंदी कहानी स्त्री के सशक्त होते तमाम रूपों को उद्घाटित करती है जिनका अध्ययन करने से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि- स्त्री अब स्वयं को अबला नहीं सबला के रूप में स्थापित करती है। वे अपनी अन्तः-बाह्य स्थितियों पर चिंतन-मनन करती हुई अपने लिए एक नयी राह के अन्वेषण में लगी है। आज की कहानियों की अधिकांश नारी पात्र परंपरागत ढांचे को तोड़ देने को तत्पर हैं। कहानी 'घरौंदा नहीं,घर' की 'सरोजा' भी अपनी दुर्गति के कारणों को जानकर उस पर विचार-मंथन करती है। वह सोचती है- "क्यों नहीं मैं लादे हुए बंधनो को तोड़ती हूँ? सच कहती हूँ कि अपने को तिल-तिल व मारने वाली मैं, क्यों डरती हूँ कि यदि मैं पति द्रोह करूंगी या उससे अलग हो जाऊंगी तो मेरे चारों ओर 'छिनाल' शब्द का भयंकर शोर मच जाएगा? मेरे सतीत्व पर कीचड़ के छींटे पड़ने लगेंगे। जैसे मेरा सारा व्यक्तित्व और अच्छाइयाँ ही समाप्त हो जाएंगी। इसीलिए तो मुझे बार-बार संदेह होता है कि मैं विद्रोह नहीं कर रहीं हूँ। विद्रोह करने की क्षमता मुझमें नहीं है। है तो मुझमें त्रिया-हठ। वरना मुझे विद्रोह तो कर देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करूंगी तो मेरी देह का मरणासन्न रूप में विष-मंथन होता रहेगा"।[2] अंततः सरोजा अपने पति और ससुर के अत्याचारों से तंग आकर, समाज की बनाई गयी खोखली मान्यताओं व परंपराओं को दरकिनार कर अपने पति का घर छोड़ देती है। इतना ही नहीं, शिक्षित सरोजा अपने अधिकारों से परिचित होने के साथ-साथ उन अधिकारों का प्रयोग करना भी जानती है। वह अपने पति को चुनौती देते हुए कहती है- "पत्नी सदा सहन करती है कि घर का नंगापन बाहर न जाये। पर आप तो अन्याय पर अन्याय कर रहें है। सुनिये, मैं तीन दिनों की मोहलत देती हूँ फिर मैं अदालत के दरवाजे खटखटाऊंगी"।[3] कहानी के अंत में ऊहापोह की स्थिति में फसी 'सरोज' एक सशक्त और सक्षम चरित्र के रूप में सामने आती है। वह सरकारी नौकरी प्राप्त कर अनामिका को गोद लेकर अपनी एक अलग दुनियाँ बसाती है। वास्तव में पुरुष पर स्त्री की निर्भरता ने उसे उसके हकों व अधिकारों से वंचित करने में बड़ी भूमिका निभाई है। किंतु आज की नारी ने अपनी शक्ति को पहचाना है। आज की स्त्री पुरुषों द्वारा उनसे छल किए जाने पर यह कदापि नही सोचती की अब उसका आगे क्या होगा। 'वाह किन्नी, वाह' की 'दिवाली' भी अपने पति के घिनौनेपन को सहने के लिए अभिशप्त नहीं है। वह अपने पति के किसी अन्य औरत से संबंध को जानकर टूटती व भिखरती नहीं है। बल्कि वह अपने आत्मसम्मान व अस्तित्व की रक्षा करते हुए कहती है- "मैं आप जैसे लम्पट पर थूकती हूँ। मैंने आपकी कितनी इज्जत की है, पर आप मक्कार व लुगाईखोर हैं। मैं मिनखोरी नहीं हूँ। केवल पेट भरने के लिए आपके पास नहीं रहूँगी। मेरे हाथों-पावों और शरीर में बड़ी ताकत है। मेहनत मजदूरी करके पेट भर लूंगी"।

इस दौर की हिंदी कहानियों में 'स्त्री' शहरी हो या ग्रामीण वह प्रेमचंद की नायिका 'गंगी'(ठाकुर का कुआं) के समान मूक प्रतिरोध दर्ज़ नहीं करती बल्कि अपने ऊपर होने वाले छोटे बड़े सभी प्रकार के अत्याचारों का खुलकर प्रतिरोध व प्रतिकार करती नजर आती है। मजबूरी बस ना तो वो कोई काम करना चाहती है

और न ही किसी को अपना फायदा उठाने देती है। एक ओर अनीता गोपेश की कहानी 'अन्ततः' की 'दिव्या' जो एक नाटक कंपनी में में काम करती है। निर्देशक द्वारा दिये गए छोटे कपड़े को पहन कर नृत्य करने से इनकार कर देती है। व स्पष्ट शब्दों में कहती है- " सर ! माफ करिएगा मैं इस पोशाक में डांस नहीं कर पाऊँगी।"[5] निर्देशक द्वारा अनुबंधन का फायदा उठाये जाने पर वह और जोर देते हुए बोलती है- "मतलब आप नंगा नाचने को कहें तो हम वो भी करें"। वहीं दूसरी तरफ ग्रामीण परिवेश से संबंध रखने वाली 'सांच है प्रेम' की सब्जी बेचने वाली 'हँसली' बड़ी दबंगई के साथ 'रत्तू' से कहती है- "सुन रे रत्तू, मैं तेरी नीयत को जानती हूँ। तू जो लप्पर-चप्पर करता है न, वह कुत्ते की भौं-भौं जैसा लगता है। मुझे इधर तेरी आँखों में अजीब-सी चमक आने लगी है जैसे बिल्ली की आँखों में होती है, पर तुझे एक बात साफ-साफ कह दूं। हँसली ऐसी-वैसी लड़की नहीं है। सड़क का नलका नहीं है कि कोई भी आता-जाता पानी पी ले"।[7] कहानी में हँसली किसी भी मायने में अपने को कमजोर नहीं मानती। इस पितृसत्तात्मक समाज में एक स्त्री का पुरुष के बिना अकेले रहना बड़ा ही कठिन है। लेकिन हँसली पति और पिता के अभाव में भी अपनी बूढ़ी माँ के साथ गाँव में बड़ी गरिमा और सम्मान के साथ रहते हुए लोगों की ललचाई नजरों से खुद को बचाती है। वह अपने अस्तित्व पर कुदृष्टि डालने वाले पुरुषों को मुहतोड़ जवाब देते हुए स्पष्ट कहती है कि- "मुझे कोई सड़क की फेंकी हुई रोटी न समझे कि उठाई और खा ली। मुझे रात का फेंका हुआ आटा न जाने कि घर जाकर तवे पर बिछा दिया"।[8] कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से आज की सबल नारी का रूप प्रस्तुत किया है, जो गलत होने पर भ्रष्ट हवलदार या पुलिस वाले को भी फटकार लगाने से गुरेज़ नहीं करती।[6,7]

आज लड़कियां किसी भी मायने में लड़कों से कम नहीं हैं। वे अपनी शिक्षा और जागरुता के बल पर अपने ससुराल के साथ-साथ अपने माता-पिता के प्रति भी जिम्मेदारियों का निर्वहन बाखूबी करती हैं। आज अमूमन स्त्रियाँ अपने बूढ़े माता-पिता का सहारा बनना चाहती हैं। घर में भाई के ना होने पर वे, बेटी होने के वास्तविक उत्तरदायित्व को निभाना चाहती हैं, इसके लिए वह पति और ससुराल वालों से लड़ने का सामर्थ्य भी रखती हैं। कहानी 'जाग उठी है नारी' की नायिका 'भूमि' वर्तमान स्त्री के इसी रूप का प्रतीक बनकर उभरती है। जो अपने बूढ़े माँ-बाप के जीवन निर्वहन का सहारा बनने हेतु, पति 'शोभन' के द्वारा दिए गए तलाक के पेपर तक साइन कर देती है। वह कोर्ट में बड़े तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बातों को जज के सामने रखती है और शोभन के द्वारा लगाए गए झूठे आरोपों को गलत भी साबित करती है। वह कहती है- "मेरे ऊपर लगाया गया आरोप बेबुनियाद है जज साहब। मैं कोई पैसा शोभन की कमाई का नहीं लुटाती। मैं तो अपनी तनख्वाह में से बेसहारा माँ-बाप की मदद करके अपना फर्ज अदा करती हूँ। जिस माँ-बाप ने पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया, पढ़ा लिखाकर नौकरी लगवाई। आज वे बूढ़े और लाचार हैं। उनकी मेरे सिवा कोई और संतान नहीं तो क्या मैं भी अपने कर्त्तव्यों से बिमुख हो जाऊँ। नहीं जज साहब! मैं ऐसा नहीं कर सकती। समाज पतन की ओर जाएगा। यदि बेटी माँ-बाप का सहारा नहीं बन सकती तो कौन देगा परिवार में कन्याओं को जन्म? कन्या भ्रूण हत्याएँ होंगी। अब नारी को ही कुछ करना होगा, उसे जागना होगा, आज मै जाग उठी हूँ, कल कोई और जागेगा"। आज स्त्रियों की इसी सोच ने बेटियों को भी घर-परिवार में बेटों के समान अधिकार व सम्मान दिलाया है। आज वें घर में बोझ नहीं बल्कि परिवार का बहुमूल्य हिस्सा है।

वर्तमान हिंदी कहानीकारों ने अपनी कहानी के माध्यम से न केवल विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियों के बदलते सशक्त स्वरूप का चित्रण किया है। बल्कि विधवा तथा तलाकसुदा स्त्रियों की बदलती छवि को पेश करते हुए उनके पुनर्विवाह के प्रति परंपरागत मानसिकता को परिवर्तित करने में भी सफलता हासिल की है। कहानी 'आंच' की बाल विधवा 'सुमन' उसकी जमीन हड़पने और इज्जत लूटने आये पंडित जगन्नाथ और ठेकेदार माणिकलाल की आँखों में मिर्च झोंक देती है। अपने शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न के बावजूद वह टूटती नहीं बल्कि अपने प्रेमी दिलीप से विवाह करने का फैसला लेती है। जब दिलीप गाँव वालों के डर से सुमन को गाँव छोड़कर भाग चलने के लिए कहता है तो सुमन पलायन की अपेक्षा संघर्ष का रास्ता अपनाती है और गाँव में ही रहने का निर्णय लेती है। जो एक निर्बल व सहमी नहीं बल्कि एक सबल 'विधवा' के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है।[8,9]

यह सच है की वर्तमान सदी में महिलाओं ने अनेक कीर्तिमान गढ़े हैं। आज स्त्रियों ने समाज में अपनी स्वतंत्रता, अपने वर्चस्व का परचम लहराया है। उसने पुरुष सत्ता के बरक्स अपना एक अलग एवं अहम अस्तित्व कायम किया है। किंतु विडंबना यह भी है कि स्त्री-स्वातंत्र्य की इस छीना-झपटी में स्त्रियों ने अपने नैसर्गिक चरित्र का हनन भी किया है। अधिकार, हक व पुरुष से बराबरी की इस होड़ में अपनी उच्छृंखलता को ही अपनी वास्तविक स्वतंत्रता व स्त्री-सशक्तिकरण का वास्तविक पर्याय मान बैठी हैं। चूंकि कहानीकार का उद्देश्य होता है पाठक के समक्ष यथार्थ को प्रस्तुत करना। अतः वर्तमान हिंदी कहानियाँ स्त्री के इस 'उच्छृंखल' रूप को भी बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं। कहानी 'संत्रासित मुखौटा' की 'रीटा' के बिचार वर्तमान स्त्रियों के उस रूप पर एक तीखा व्यंग करती है, जो पुरुष जैसा चरित्र धारण कर उसके पदचिह्नों पर चलने को उतावली हैं। वह कहती है- "कभी-कभी लगता है कि भूख-प्यास से भी अधिक महत्वपूर्ण है काम-वासना। पुरुषों में होड़ मची है कि रोज कितनी औरतों को स्पर्श करना है। मन ही मन हिसाब लगाते हैं। घर में बीबी है तो क्या, वो तो रोज की बात है। मगर नई-नई लड़कियां, जवान जिस्म, आमंत्रित करते अंग-उघाडू वस्त्र, यही चलन होता जा रहा है। पुरुष मनोवृत्ति भी कामुक होती जा रही है। लड़कियां भी अपने आपको पुरुषों को आकर्षित करने का साधन समझने लगी हैं। कहीं-कहीं लड़कियां भी छेड़ खानी का आनंद उठाने लगी हैं। आखिर वें भी इंसान हैं। एंजॉय करने का हक सिर्फ मर्दों को नहीं है"।[10] वहीं अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'बताना जरूरी है क्या' आज की उच्छृंखल स्त्री को रिप्रजेंट करती है। कहानी की नायिका इतनी बोल्ड है कि बैंककर्मी द्वारा उसके प्रोफेशन के बारे में पूछे जाने पर वह कहती है- "डोंट राइट हाउसवाइफ। मैं प्रोफेशन में हूँ। आई एम प्रोफेशनल कॉलगर्ल"।[11]इतना ही नहीं वह आगे कहती है- "मेरी कोई मजबूरी नहीं थी। मेरे साथ कोई हादशा नहीं हुआ। मुझे इस पेशे में किसी ने जबरदस्ती नहीं धकेला। मैं इसमे अपनी मर्जी से आई हूँ। ....अमीर खानदान से हूँ सो धन की कोई कमी नहीं थी। सिर्फ मस्ती के लिए मैंने इस प्रोफेशन में कदम रखा"। स्पष्ट है कि 21वीं सदी की यह नारी न तो गरीबी के कारण इस धंधे में आयी न तो उसकी कोई अन्य

विवशता है। वह सिर्फ अपने शौक व एंजॉयमेंट के लिए यह कार्य करती है। वास्तव में यह आज के समय की सबसे बड़ी सच्चाई है। फर्राटेदार अंग्रेजी बोलने वाली अधिकांश कॉलगर्ल संपन्न परिवारों की होती हैं। जो कम समय में अधिक से अधिक पैसा कमा लेने और आसानी से आधुनिक सुख सुविधाओं के भोग की ख़्वाहिश में इस रास्ते को सहर्ष स्वीकार करती हैं।

वस्तुतः यह सत्य है की स्त्रियों की भी अपनी भौतिक व शारीरिक इच्छाएँ व महत्वाकांक्षाएँ होती हैं और उनकी पूर्ति आवश्यक भी है। किन्तु विडंबना यह है कि आज शिक्षित एवं जागरूक स्त्रियाँ भी इनकी पूर्ति के लिए गलत रास्ते अख़्तियार कर रहीं है। यहाँ तक की अपने कैरियर को ऊँचाइयों पर ले जाने के लिए अपनी देह का उपयोग करने से भी नहीं कतराती। कहानी 'वह लड़की' की 'रोजी' ऐसी ही स्त्री है जो अपने बॉस के यौन आमंत्रण को स्वीकार कर प्रमोशन पा लेती है। तो वहीं कविता की कहानी 'उस पार की रोशनी' की वर्तिका गृहस्थ नारी के उस रूप को उजागर करती है, जिसके लिए अपनी जिंदगी और महत्वाकांक्षाएँ इतनी जरूरी है कि वह अपने पति सूरज को धोखा दे रवि से संबंध बनाती है। इस प्रकार वर्तमान समय की ऐसी अनेक कहानियाँ है जो स्त्री-स्वतंत्रता व स्त्री-मुक्ति के नाम पर उच्छृंखल होती स्त्रियों के रूपों को उजागर करती है।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी कहानियां वर्तमान स्त्री के बदलते विभिन्न रंगों को प्रस्तुत करती है। एक ओर वर्तमान हिंदी कहानियां स्त्रियों के सशक्त होते विभिन्न प्रतिरूपों को उद्घाटित करती हैं तो वहीं दूसरी ओर उसके पथ-भ्रष्ट होते रूपों को भी पेश करती हैं।

विचार-विमर्श

शमशेर बहादुर सिंह की मशहूर कविता है 'काल से होड़'। अपनी इस कविता में वे कहते हैं 'काल तुझसे होड़ है मेरी – अपराजित तू/तुझ में अपराजित मैं वास करूं'। अपराजित होने का भाव कब पैदा होता है ? स्वाभाविक है ऐसा भाव काल से गुत्थम गुत्था होने, उससे मुठभेड़ करने से ही पैदा होता है। मुक्तिबोध भी कविता को 'आवेग त्वरित/कालयात्री' बताते हैं। कहने का अर्थ यह है कि कविता का रिश्ता अपने काल से होता है। वह तत्काल, समकाल और देश काल से निरपेक्ष नहीं होती। यही कविता और समय के बीच का द्वन्द्वात्मक रिश्ता है जिसमें समय कवि को है बनाता है, गढ़ता है, वहीं कवि भी अपने समय को रचता है। आज हम जिस दौर में हैं यह कैसा दौर है ? आलोचक मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी है 'ऐसा समय है जब मनुष्य को समाज विरोधी बनाया जा रहा है, वही समाज को मनुष्य विरोधी'। समाज के वे हिस्से जो वास्तविक संचालक है और जिन्हें मुख्य धारा में होना चाहिए आज हाशिए पर हैं। स्त्री समाज उनमें प्रमुख है। जहां तक काव्य सृजन की बात है, मानव समाज की पीड़ा और बराबरी के समाज की उत्कट आकांक्षा हमेशा से स्त्री कविता का आधार रहा है।[10,11]

हमारे यहां लोकगीतों की समृद्ध परम्परा रही है। स्त्रियों ने अपना दुख-दर्द, हंसी-खुशी, राग-विराग और भावों को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त किया है। इसमें स्त्री की दशा व दुर्दशा का ही बयान ही नहीं है वरन इनमें सामंती और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति उनका क्षोभ भी व्यक्त हुआ है। यह सचेतनता से अधिक स्वतःस्फूर्त रहा है। लेकिन जैसे जैसे लोकतांत्रिक व समाजवादी आंदोलन तेज हुए, लैंगिक समानता की आवाज भी मुखर हुई है। दुनिया में स्त्री स्वतंत्रता और स्त्री मुक्ति का विमर्श सामने आया। एक तरफ जहां इसे अस्मिता विमर्श या स्त्रीवादी विमर्श के रूप में देखा गया, वहीं इस विचार ने भी आकार ग्रहण किया कि पीड़ित व शोषित समाज की मुक्ति में ही स्त्री मुक्ति संभव है। इस तरह नारीवादी और उसके बरक्स जनवादी – दोनों स्वर मुखर हुए। ये आपस में इस तरह घुले'मिले हैं कि इन्हें यांत्रिक तरीके से अलगाया नहीं जा सकता है। यह स्त्री कवियों द्वारा लिखी जा रही समकालीन कविता का आधार बना है। उल्लेखनीय है कि स्त्री और उसका जीवन स्वयं कविता का विषय बना है।

देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था है। स्त्री और पुरुष को कानूनन समानता है। भारत का संविधान स्त्री और पुरुष में भेदभाव नहीं करता। इसके बावजूद क्या यह जमीनी हकीकत है ? क्या स्त्री समाज को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समानता प्राप्त है ? वास्तविकता तो यह है कि समाज, साहित्य, कला से लेकर राजनीति तक वह पुरुषों और उनके द्वारा निर्मित संरचनाओं को अभिव्यक्त करने का उपादान मात्र है। स्त्री की प्रतिभा और उसका सौंदर्य भी पुरुषों की आकांक्षाओं को पूरा करने का साधन है। कवि रघुवीर सहाय के शब्दों में कहूं 'स्त्री की देह उसका देश है'। अर्थात वह समाज, देश सभी से विस्थापित है और अपनी देह तक सीमित है। जिस राष्ट्र की कल्पना में उसे जीना और रहना पड़ता है, वह अपने चरित्र और व्यवहार में मर्दाना है। विडम्बना यह है कि यह मर्दाना राष्ट्रवाद स्त्री देह पर कब्जा करने तथा जीते जाने वाले शरीर के रूप में देखता है। उसके लिए वह यौन क्रीड़ा की वस्तु है, युद्ध का मैदान है। यह हमारी राजनीतिक व्यवस्था का दोहरापन है जिसमें एक तरफ स्त्रियों को लेकर बड़ी 'आदर्शवादी' बातें की जाती हैं, 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का शोर मचाया जाता है, वहीं बलात्कारियों का विजय रथ स्त्रियों की स्वतंत्रता से लेकर उनकी देह तक को रौंदता गुजर रहा है। वह आमतौर पर मादा मवेशी की तरह ही देखी और समझी जाती हैं। इसी आधार पर देह पर अधिकार का प्रश्न उभरा और देह मुक्ति को स्त्री मुक्ति के पर्याय के रूप में देखा गया।

स्त्री समाज आज जिस खास समस्या से पीड़ित है, वह है महिला हिंसा। इसके कई रूप है। थामसन रॉयटर्स फाउण्डेशन ने अपने सर्वे में महिलाओं के लिए मानव तस्करी, यौन शोषण और हिंसा के मामले में भारत को दुनिया का सबसे खतरनाक देश माना है। इस रिपोर्ट पर सवाल खड़े किये गये। लेकिन जो सच्चाई है, उसे झुठलाया नही जा सकता है। वर्तमान समय का सबसे दुखद व भयावह पहलू यह है कि इस बर्बरता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष राजनीतिक व सामाजिक समर्थन मिल रहा है। कई मामलों में हमने देखा कि बलात्कारियों और अपराधियों को सत्ताधारियों व राजनेताओं का संरक्षण मिला। पिछले दिनों कठुआ और उन्नाव में जो घटनाएं हुईं, उनमें यह देखने में आया। जम्मू के कठुआ में बात्कारियों के समर्थन में जुलूस निकला जिसमें सत्ताधारी दल के मंत्री भी शामिल थे। उस जुलूस में तिरंगा लहराया गया। उन्नाव में भी इसी प्रकार की कहानी दोहराई गई।[12,13]

साफ है कि भले ही संविधान स्त्रियों को बराबरी का अधिकार प्रदान करता हों पर अभी भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था काफी

मजबूत है। स्त्री सशक्तिकरण की चर्चा जोरों पर है। पर इसमें सबसे बड़ी बाधा हमारा सामाजिक ढ़ांचा, मर्दाना दृष्टिकोण और पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जिसके नीचे दबने-पिसने के लिए स्त्री समुदाय को बाध्य किया जा रहा है। यह भी देखा जा रहा है कि मौजूदा निजाम के दौर में मनुवादी संस्कृति की वकालत की जा रही और ऐसा विचार रखने वाली शक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि स्त्रियों की बड़ी जमात घर में बैठने को तैयार नहीं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय जीवन और समाज के विविध क्षेत्रों में उनकी बढ़ती भागीदारी और दावेदारी ने उन्हें अबला की स्थिति से बाहर निकाला है। संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण का विधेयक भले ही पारित न हो पाया हो लेकिन सत्रहवीं लोकसभा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। अपने अधिकारों के प्रति उनमें सजगता दिख रही है। वे बाहर निकल रही हैं और सामूहिक पहल ले रही हैं। वे बलात्कारियों से लेकर इन्हें संरक्षण देने वाली व्यवस्था से लड़ने-भिड़ने को तैयार हैं। यौन उत्पीड़न और हिंसा की हरेेक घटना के विरोध में वे सड़कों पर उतर रही है। वे समानता व स्वतंत्रता का अधिकार कागजों में नहीं, अपने जीवन में और जमीन पर देखना चाहती हैं। वे बेखौफ आजादी चाहती हैं। निर्भया, आसिफा प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरी हैं।

यही सामाजिक व्यवस्था का द्वन्द्व है। स्त्री हिंसा की बढ़ती घटनाओं ने लोगों को काफी उद्विग्न और उद्वेलित किया है। अधखिले फूलों और कलियों को रौंदने का जो सिलसिला चल रहा है वह व्यथित कर देने वाला है। निर्भया के बाद ऐसी घटनाओं की तो जैसे बाढ़ आ गई। आसिफा के साथ हुई हिंसा की घटना ने मन-मस्तिष्क को इस कदर संवेदित किया कि स्त्री हिंसा और बलात्कार का प्रश्न आज केंद्र में है। इसकी अभिव्यक्ति कला के विभिन्न रूपों में हुई है, हो रही है। फूलों के कत्ल किये जाने पर संवेदनशील कवियों ने अपने गुस्से का इजहार किया है। इस विषय पर अनेक भाषाओं में कविताएं लिखी गई। ऐसी कविताओं की दो किताब पिछले दिनों आयी। पटना से निकलने वाली पत्रिका 'कथान्तर' ने 'मुझे कविता पर भरोसा है' शीर्षक से कविताओं का संग्रह निकाला। वहीं, नवारुण प्रकाशन की ओर से 'आसिफाओं के नाम' कविताओं की किताब आई । इन दोनों संग्रहों में कवियों के साथ कवयित्रियों की इस विषय पर केन्द्रित कविताएं हैं। चंद्रकला त्रिपाठी, सविता सिंह, शीला रोहेकर, सीमा आजाद, विमल किशोर, मृदुला शुक्ला, चंद्रा सदायत, सुमन केशरी, पार्वती नायर, अर्चना यादव, बंदना भट्ट आदि की कविताएं यहां संकलित है।ं हम यहां स्त्री हिंसा को केन्द्र कर लिखी गयी इन कविताओं तथा समकालीन कविता में व्यक्त स्त्री स्वर की चर्चा करेंगे।[14,15]

स्त्री हिंसा की घटनाएं आईना है। इसमें भारत की सामाजिक व्यवस्था को देखा जा सकता है। कविताएं दर्पण का काम करती है। इन कविताओं से गुजरते हुए पाठक संवेदित हुए बिना नहीं रह सकता। पार्वती नायर की कविता 'मैं घोड़े को घर भेज दिया था मां!' संवाद शैली में लिखी गई है और आप इसे पढ़ते हुए मर्माहत हुए बिना नहीं रह सकते। कविता एक तरफ उन दरिंदों से परिचित कराती है, उन्हें बेनकाब करती है और बताती है कि यह समाज कैसा बन गया है। यहां खूंखार जानवर और मनुष्य के बीच का भेद मिट गया है। हमारे बीच ऐसे मनुष्य हैं जिनके सिर पर जानवरों की तरह सींग नहीं है, खूनी पंजे नहीं है लेकिन ये खूनी पंजा और सींग वाले जानवरों से भी ज्यादा खतरनाक है:

'मां, वो अजीब से दिखते थे
न जानवर, न इंसान जैसे
उनके पास कलेजा नहीं था मां
लेकिन उनके सींग या पंख भी नहीं थे
उनके पास खूनी पंजे भी नहीं थे
लेकिन उन्होंने मुझे बहुत सताया'

कविता मात्र स्थितियों का वर्णन नहीं करती है, वह सामाजिक व्यवस्था की तह में जाती है। भारत की महान सांस्कृतिक परंपरा की बार-बार दुहाई दी जाती है। उसकी शेखी बघारी जाती है। यहां स्त्री को देवी का स्थान मिला। 'यत्र नारी पूजयन्ते, तत्र रमन्ते देवता' जैसी आदर्शवादी बातें की जाती है लेकिन इस आदर्श के अंदर की सच्चाई क्या ह,ै इसे स्त्री कवियों ने सामने लाने का काम किया। कविता इसका पोस्टमार्टम करती है। कविता इतिहास की उन घटनाओं का संदर्भ देती है जिसमें स्त्री को छला गया। धर्म प्रचारकों की सभा में उसे विवस्त्र किया गया। स्त्री कविता धर्म और जाति की व्यवस्था को स्त्री के शोषण और दमन का कारण मानती है। उस पर चोट करती है। अर्चना यादव कहती हैं

'सुनो, द्रोपदी शस्त्र उठा लो
अब गोपाल नहीं आयेंगे
छोड़ो मेंहदी खड्ग संभालो
खुद ही अपना चीर बचा लो
कल तक केवल अंधा राजा
अब वह गूंगा बहरा भी है
सुनो, द्रोपदी शस्त्र उठा लो
अब, गोपाल ना आयेंगे।'

हम इक्कसीवीं सदी के दूसरे दशक में हैं पर आज भी मध्ययुग के मूल्य कायम हैं। वह दौर था जब स्त्रियों का दर्जा धन दौलत की तरह हुआ करता था। वह भोगने की वस्तु समझी जाती थी। एक राजा जब दूसरे राज्य पर चढ़ाई करता और उस पर विजय प्राप्त करता तो न सिर्फ वह धन दौलत पर कब्जा करता बल्कि औरतों को भी बंदी बनाता था। औरतों पर उसका यह कब्जा उसकी जीत की निशानी होती। आज यौन उत्पीड़न व बलात्कार जैसी घटनाओं से जो तथ्य सामने आया है उससे स्पष्ट है कि स्त्रियां न सिर्फ यौन क्षुधा की पूर्ति के लिए पुरुषों का शिकार बनती है बल्कि इसका एक सामाजिक पहलू भी है। किसी से बदला लेने, उसकी जमीन पर कब्जा करने, एक खास वर्ग विशेष के लोगों को प्रताड़ित करने, उन्हें बेदखल करने जैसे निहित उद्देश्य के लिए भी स्त्रियों को महिला हिंसा का शिकार बनाया जाता है। एक खतरनाक दृष्टि भी देखने में आ रही है। वह है महिला हिंसा को सांप्रदायिक चश्मे से देखा जाना। स्त्री कविता ने ऐसे विषय को अपने दायरे में लिया और सांप्रदायिक नजरिये का विरोध किया। उनकी नजर में 'बलात्कारी सिर्फ बलात्कारी होते हैं'। विमल किशोर अपनी कविता में कहती है:ं

'एक स्त्री का स्त्रीलिंग होना ही
बलात्कारियों के लिए काफी है
उम्र का बंधन नहीं
कोई मर्यादा नहीं

रिश्तो से कोई वास्ता नहीं
धर्म या जाति की सीमा नहीं
बलात्कारी सिर्फ बलात्कारी होते हैं
हिंदू या मुसलमान नहीं होते हैं
ये मुजरिम/सजा के हकदार
मानवता के शत्रु'

असमानता और हिंसा के जितने रूप हैं, स्त्री समाज को उससे गुजरना पड़ता है, भ्रूण हत्या से लेकर वृद्धा की हत्या तक। आतंकवाद, साम्प्रदायिकता और जातिवाद को लेकर समाज जब भी हिंसा की चपेट में आता है, स्त्रियां सबसे पहले इसका शिकार बनती हैं। मौजूदा फासिस्ट हिंसा का एक विशेष रूप – मॉब लिंचिंग' या 'भीड़ हत्या' देखने में आया है। देखा जाय तो स्त्रियों के संदर्भ में यह गैंग रेप और हत्या है। इस यथार्थ को नकार कर समकालीन स्त्री काव्य चेतना का निर्माण नहीं हो सकता। यह चेतना आज स्त्री संवेदना, अनुभूति, स्त्री जीवन की दशा-दिशा और देह के यथार्थ से आगे निकल चुकी हैं। कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, शुभा, शोभा सिंह, अनीता भारती, निर्मला पुतुल, सरला माहेश्वरी, सीमा आजाद, वीणा भाटिया, प्रतिभा कटियार, उषा राय, संगसार सीमा, संध्या निवेदिता आदि ऐसी कवयित्रियां हैं जहां इस चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है।[16]

शोभा सिंह का चर्चित कविता संग्रह है 'अर्द्ध विधवा'। उनकी अर्द्ध विधवाएं वे कश्मीरी औरते हैं जिनके पति के जिन्दा होने पर संदेह है। वे मार दिये गये या लापता हैं। इन औरतो की व्यथा ही नहीं, उनका संघर्ष भी इन कविताओं में व्यक्त हुआ है। शोभा सिंह की नजर में एसिड पीड़िता भी है। वे इस क्रूरता को उजागर करती हैं:

'तेजाबी हमला/जलती चीखें
गलती मांस मज्जा
यातना के चरम में
फिर/स्पन्दनहीन -घुप्प अंधेरा....
इस तरह/उसके बहुत से सालों को
निगल गया/तेजाबी हमला'

एक बात जो इन कविताओं में दिखता है, वह है एक जिद। हार न मानने की जिद जैसे स्त्री जिद की पर्याय है। जिन पर तेजाब से हमला किया गया, उनकी जिन्दगी को बदसूरत बनाया गया, वे वापस लौटती हैं 'लौट रहीं वे/अपने सामान्य जीवन में/बहुत कुछ हार कर भी/बहुत कुछ जीतती हुई/तोड़ नहीं पाए नपुंसक कायर/उनका उन्नत मनोबल।'

हालात जैसे हैं, उसे देखते हुए आक्रोश का भाव स्त्री कविता का स्वाभाविक भाव है। उषा राय में समूचे परिवेश को लेकर गुस्सा है। औरतें अतीत से जो भोगती चली आ रही है, उसे लेकर पागलपन की हद तक का गुस्सा है। वे इसे एक रूप देना चाहती है, मूर्त करना चाहती हैं:

'बेचैन हो उठती हूं इससे पहले
कि गलत समझा जाए मुझे
पागलों की तरह ढूंढ रही हूं
अपना गुस्सा जिसे वर्षों पहले
तकिए के नीचे दबा दिया था मैंने'

जैसे आज स्त्रियां किसी से दया व करुणा की उम्मीद नहीं करती, वैसे ही स्त्री कविता में कहीं भी निरीहता का भाव नहीं आता है। सविता सिंह कहती हैं 'इस क्रूरता पर हम रोयेंगे नहीं'। सदियों से स्त्रियों ने जो सहा है, भोगा है, कविता में जो आक्रोश है, वह उसी की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। सबसे बड़ी खूबी कि कविता में यह साहस, हिम्मत और हौसले के रूप में व्यक्त हो रहा है। बल्तकृत होने या अत्याचार का शिकार होने के बाद भी वहां अपमान का भाव नहीं है बल्कि अत्याचारियों-बलात्कारियों के विरुद्ध उठ खड़े होने का भाव है। सविता सिंह की कविता में यह यूं आता है:

'मरने के बाद जागकर शिल्पी ने
अपने बलात्कारियों से कहा –
तुम सबने सिर्फ मेरा शरीर नष्ट किया है/मुझे नहीं
मैं जीवित रहूंगी सदा प्रेम करने वालों की यादों में.....
आक्रोश बनकर/लाखों करोड़ों दूसरी लड़कियों के हौसलों में
वैसे भी नहीं बच सकता ज्यादा दिन बलात्कारी
हर जगह रोती कलपती स्त्रियां उठा रही हैं अस्त्र'

स्त्री रचनाकारों की लम्बी सूची बनायी जा सकती है [17] परन्तु यहां महिला हिंसा के रूपों के साथ स्त्री कविता में प्रतिरोध के स्वर और जनवादी प्रवृति की पड़ताल मुख्य उद्देश्य है। यहां जिनकी चर्चा है, वे कवयित्रियां नारीवादी विमर्श से आगे जाती हैं। वे अपने दायरे को तोड़ती हैं। कुछ साहित्यिक चिन्तकों की अवधारण है कि कविता तात्कालिक होकर अपने प्रभाव को सीमित कर देती है। लेकिन इतिहास में अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं जो समाज में बड़े मोड़ पैदा करते हैं। रचनाकारों से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने समय में हस्तक्षेप करे। आज के समय के बारे में कहा भी जा रहा है कि यह स्त्री विरोधी काल है। इसे नकार कर स्त्री कविता नहीं रची जा सकती।

कात्यायनी अपनी जनपक्षीय कविताओं के लिए जानी जाती हैं। उनके कोठार में ऐसी ढेर सारी कविताएं हैं जिनमें स्त्री हिंसा के विविध रूप देखने को मिलता है। उनकी कविता गहरी पीड़ा और आक्रोश से उपजती है और पाठक की संवेदना को सघन करती हैं। वे उन घटनाओं को समेटती हैं जो हाल के दिनों में घटी हैं। इन पर समाज की प्रतिक्रिया का न होना, चुपचाप बर्दाश्त कर लिए जाने से इस कदर आहत होती हैं कि कविता ललकार की मुद्रा अख्तियार कर लेती है। क्या समाज सब कुछ मौन देखता रहेगा, कायर बना रहेगा, बर्बरता को स्वीकार करता रहेगा ? उनकी कविता में विद्रोही स्वर सुना जा सकता है – 'यह आर्तनाद नहीं, धधकती हुई पुकार है'। वे कहती हैं:

'जागो मृतात्माओ!
बर्बर कभी भी तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दे सकते हैं।
कायरो! सावधान!!
भागकर अपने घर पहुँचो और देखो
तुम्हारी बेटी कॉलेज से लौट तो आयी है सलामत,
बीवी घर में महफूज तो है।
बहन के घर फोन लगाकर उसकी भी खोज-खबर ले लो!
कहीं कोई औरत कम तो नहीं हो गयी है
तुम्हारे घर और कुनबे की?'

कात्यायनी की कविताओं में मात्र स्थितियों का वर्णन ही नहीं है बल्कि हालात को बदलने की छटपटाहट भी है। हमारे

राजनीतिज्ञों के उस सोच पर भी वे प्रहार करती हैं जो पुरुषवादी है और बलात्कार जैसी घटना को हल्के में लेते हैं और चलताऊ बयान देकर किनारा कर लेते हैं। जैसे सपा के वरिष्ठ नेता मुलायम सिंह ने यह कहा कि 'लड़कों से तो गलती हो ही जाती है'। कात्यायनी का सांकेतिक प्रतिरोध में यकीन नहीं है जैसा आज चलन में है कि किसी भी घटना को लेकर महानगरों व शहरों में मोमबत्तियां जलाकर शोक प्रकट किया जाता है। कात्यायनी मोमबत्ती संस्कृति के विरुद्ध हैं। वे कहती हैं:

'मोमबत्तियाँ जलाने और शोक मनाने से भी कुछ नहीं होगा। अपने हृदय की गहराइयों में धधकती आग को ज्वालामुखी के लावे की तरह सड़कों पर बहने देना होगा। निर्बन्ध कर देना होगा विद्रोह के प्रबल वेगवाही ज्वार को।'

कात्यायनी का इस बात पर जोर है कि स्त्री समाज को अपनी आजादी और अधिकार का घोषणा पत्र जारी करना होगा। स्वाभाविक तौर पर यह अस्मिता विमर्श से आगे की बात है। अनामिका की कविताओं में कात्यायनी की तरह विद्रोही चेतना का दर्शन भिन्न तरीके से होता है। वे स्त्री जीवन की विडम्बनाएं सामने लाती है और उसे अपना विषय बनाती हैं। जैसे वे कहती हैं 'आप लाघ सकते हैं सात समन्दर/बस अपनी परछाई नहीं लांघ सकते' और 'दो लोग जो नफरत करते हैं/एक-दूसरे से/सोने को मजबूर होते हैं साथ-साथ'। लैंगिक विषमता के विरुद्ध यहां प्रतिरोध का स्वर गहरा और संश्लिष्ट है। अनामिका पुरुषों द्वारा बनाए नियमों को मानने को बाध्य नहीं। वे उसे तोड़ना चाहती हैं। एक नयी दुनिया की संकल्पना उभरती है। वे कहती हैं:

'हलो धरती, कहीं चलो धरती
कोल्हू का बैल बन गोल-गोल घूमें हम कब तक ?
आओ, कहीं आज घूमते हैं तिरछा
एक अगिनबान बनकर/इस ग्रह पथ से दूर.....
उन्होंने कोंच दिया काल कोठरी में
अपनी कलम से मैं लगातार
खोद रही हूं तब से/काल-कोठरी में सुरंग'

यही तो है स्त्री जीवन की सच्चाई। सदियों से वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा बनायी काल कोठरी से बाहर निकलने के लिए सुरंग खोद रही है। यह मुक्ति की सुरंग है। समाज जानता है स्त्रियों का महत्व। वह जानता है कि देश दुनिया चल रही है तो स्त्री की वजह से और सृष्टि का कारण भी स्त्री है। इसीलिए उसे अपने स्थान से बेदखल कर दिया जाय। उसे अधिकारों से वंचित कर दिया जाय। पर आज वह सब पाना चाहती है। स्त्री कविता में पाने का संघर्ष मुखर हो रहा है। प्रतिभा कटियार क्या कहती हैं, इसे अवश्य सुना जाना चाहिए:

ये जो तुम्हारी प्रिय स्त्रियां हैं न
जिन्हें तुमने उन तक, उनकी खुद की चेतना
उनके महसूसने तक
पहुंचने नहीं दिया अब तक
वो सब लामबंद हो एक रोज
चक्का जाम कर देंगी जिन्दगी का
जब वे मौन होंगी तो धरती मुर्दा शान्ति से भर उठेंगी
और जब वे बोलेंगी तो आतताइयों के परखच्चे उड़ा देंगी
और वो दिन अब दूर नहीं.....

स्त्री कविता ने इस भाव-विचार को मजबूती से प्रस्तुत किया है कि स्त्री स्वयं एक इकाई है। उसे खांचों में नहीं बाांटा जा सकता है। स्त्री होना ही अत्याचार का शिकार होना है। औरत चाहे मणिपुरी हो या कश्मीरी, हिन्दू हो या मुस्लिम, आदिवासी हो या सवर्ण या दलित उसके साथ व्यवहार एक सा है। 'अगर तुम औरत हो' में सीमा आजाद कहती भी हैं कि वे कहीं सुरक्षित नहीं है घर हो या बाहर, पुलिस थाना हो या हवेली। वे कहीं भी बलत्कृत हो सकती हैं। महत्वपूर्ण बात है कि स्त्री कविता हिंसक, क्रूर और बर्बर स्थितियों के आगे समर्पण नहीं करती है। वह प्रतिरोध में खड़ी होती है। उसकी समझ है कि औरतों के लिए घरों सें बाहर निकलना, सड़कों पर उतरना और उस निजाम से भिड़ना जरूरी है जिसकी नजर में औरतें केवल शरीर हैं जिन्हें किसी कारण से या अकारण अपना शिकार बनाया जा सकता है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि स्त्री कविता के केन्द्र में स्त्री और उसका जीवन अवश्य है और यह स्वाभाविक भी है लेकिन स्त्री काव्य चेतना यहीं तक सीमित नहीं है। वर्तमान वहां मुखर रूप से उपस्थित है। वहीं, अतीत की जड़ों की पड़ताल भी है जिसकी देन वर्तमान है। साथ ही स्त्री कविता में भविष्य की गूंज भी सुनी जा सकती है। भले ही बहुत स्पष्ट न हो, पर वहां भविष्य की संकल्पना भी मौजूद है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उसका प्रतिरोध मात्र प्रतिरोध के लिए नहीं है, वह एक नयी व्यवस्था के लिए है, जिसमें नये पुरुष की परिकल्पना है। जनवादी व समाजवादी व्यवस्था में जिस नये मनुष्य की अवधारणा है, यह पुरुष उसी का प्रतिरूप है। अनामिका अपनी कविता में कहती हैं:

जन्म ले रहा है एक नया पुरुष
मेरे पातालों से.....
नया पुरुष जो अतिपुरुष नहीं होगा.....
स्वस्थ होंगी धमनियां उसकी
और दृष्टि सम्यक
अतिरेकी पुरुषों की भाषा नहीं बोलेगा।

परिणाम

महादेवी भारत में हो रहे बहुत सारे सामाजिक परिवर्तनों और व्यक्ति और समाज पर पड़ रहे इन परिवर्तनों के परिणामों की वाहक हैं. सामंती समाज और सामंती परिवार से मुक्ति और मानवीय गरिमा पर टिके समाज और संबंधों की एक अमूर्त प्रेरणा उनकी काव्य-संवेदना की नींवों में है. इसीलिए महादेवी प्रेम की कवयित्री हैं. उनकी कविता में प्रेम से भरा एक स्त्री-हृदय अपने होने का पता हर जगह देता है. उन्होंने दुख और पीड़ा को कविता का विषय बना लिया और इन विषयों पर आध्यात्मिक शब्दावली का आवरण चढ़ाकर कविताएं लिखीं-ऐसा नहीं था. परंतु महादेवी की कविताओं को इसी तरह समझा जाता रहा, क्योंकि समाज के मूल्य और उन पर टिकी स्थापित साहित्य-परंपरा उन्हें ऐसा समझना चाहती थी. सच तो यह है कि इन कविताओं के अनेक स्तर हैं. ये जटिल संरचना वाली कविताएं हैं. भारत में आधुनिकता के उदय और स्वतंत्रता के संघर्ष के विस्तृत हो कर एक समतापूर्ण समाज बनाने की मनोकांछा की पृष्ठभूमि इन कविताओं के पीछे है. इसलिए महादेवी वर्मा का जीवन और कविता दोनों ही एक नए जीवन की तलाश, उसके निर्माण और उसके संघर्ष की गवाही हैं.

महादेवी चाहतीं तो जीवनभर कविताएं लिखती रह सकती थीं. एक सक्षम-काव्य भाषा के सहारे वे मिथकों से लेकर सामयिक विषयों तक अपने काव्य-सृजन को फैला सकती थीं. जैसा पंत ने किया या निराला ने या और भी बहुत से कवियों ने. परंतु अपनी निजी अनुभूतियों को, ख़ासकर युवाकाल की निजी अनुभूतियों को व्यक्त कर देने के बाद एक कवि के रूप में उन्होंने मौन का वरण किया. बाद में उन्होंने निबंध लिखे, रेखाचित्र, कहानियां, संस्मरण आदि ख़ूब लिखे. परंतु कविताएं नहीं लिखीं. शायद कवि के रूप में वे आत्माभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं चाहती थीं, और यह आत्माभिव्यक्ति वे कर चुकी थीं या शायद वे अपनी भावनाओं को अब सार्वजनिक करने में संकोच अनुभव करने लगी थीं या शायद वे न तो अपने काव्य-विषय का दोहराव करना चाहती थीं और न ही अपने प्रौढ़ होते मन के द्वंद्वों, अनुभूतियों को कविता में व्यक्त करने की उनमें इच्छा थी. 35-36 साल की उम्र तक उनके लगभग सभी महत्वपूर्ण कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे. इसके बाद उन्होंने कविता लिखने से ख़ुद को अलग कर साहित्य की गद्य विधाओं में ही लेखन किया. उन्होंने 80 वर्ष का लंबा जीवन जिया. परंतु इस अनुपात में गद्य में भी उन्होंने बाद में बहुत नहीं लिखा. वे स्त्री-शिक्षा को अपने समय का एक महत्वपूर्ण सवाल मानती थीं. 1930 में उन्होंने इलाहाबाद के आसपास के गांवों के स्कूलों में पढ़ाया. 1933 में वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाध्यापिका के रूप में नियुक्ति हुईं. बाद में वे विद्यापीठ की चांसलर भी बनीं. उनके स्नेहिल और जिम्मेदारी से भरे इस कार्यकाल ने लड़कियों की कई पीढ़ियों को जीवन की एक नई दिशा दी. अगर उनकी छात्राओं के संस्मरणों का कभी लेखन हो पाया होता तो उनके जीवन के इस आयाम के बारे में विस्तार से पता चलता. वे साहित्य की सीमाएं जानती थीं. उन्हें सामाजिक जीवन में निभाए अपने दायित्वों का भरपूर बोध था. भारत की सांस्कृतिक ग़ुलामी उनके लिए एक बड़ा सवाल था. स्त्रियों की शिक्षा और उनका मुक्त विकास उनके लिए एक निजी सवाल की तरह थे. आज भी स्त्री-मुक्ति के संबंध में उनके विचार एक प्रेरक स्तंभ हैं-इस मुक्ति को उन्होंने अपने जीवन में जिया था, इसको एक सार्थक व रचनात्मक दिशा दी थी.[18]

निष्कर्ष

हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री - विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़िया नारी सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है।

प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रूप् में नहीं लिखा जिस रूप् में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखी है। अतः स्त्री - विमर्श की शुरूआती गुंज पश्चिम में देखने को मिला। सन् 1960 ई. के आस - पास नारी सशक्तिकरण जोर पकड़ी जिसमें चार नाम चर्चित हैं। उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी मन की अन्तद्र्वन्द्वों एवं आप बीती घटनाओं को उकरेना शुरू किए और आज स्त्री - विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है।

आठवें दशक तक आते - आते यही विषय एक आन्दोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती स्त्री - विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रेयी पुष्पा तक आते - आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी जो पितृसत्ता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की गुंज अब देह मुक्ति के रूप में परिलक्षित होने लगा।[16,17]

समाजिक सरोकारों से लैस बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच लंबे समय से यह लगातार चर्चा और चिंता का विषय रहा है कि हिंदी में स्त्री प्रश्न पर मौलिक लेखन आज भी काफी कम मात्रा में मौजूद है। स्त्री विमर्श की सैद्धांतिक अवधारणाओं एवं साहित्य में प्रचलित स्त्री विमर्श की प्रस्थापनाओं की भिन्नता या एकांगीपन के संदर्भ में पहला प्रश्न यह उठता है कि हिंदी साहित्य जगत में स्त्री विमर्श के मायने क्या हैं ? साहित्य, जिसे कथा, कहानी, आलोचना, कविता इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विधा के रूप में देखा जाता है वह दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक तथा अन्य हाशिए के विमर्शों को किस रूप में चित्रित करता है ? साहित्य अपने यर्थाथवादी होने के दावे के बावजूद क्या स्त्री विमर्श की मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर उस पर आम जन के बीच किसी किस्म की संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो पाया है ?

स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। किंतु हिंदी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि यह है कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (Sexual object) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही हैं तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परंपरा में लगातार स्त्री प्रश्नों का हास होता क्यों दिख रहा है ? क्या स्त्री विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समकक्ष रखकर स्त्री - विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है ? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल आब्जेक्ट अथवा मार्केट के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नहीं है ? उसको पहचान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक स्त्री विमर्श संभव है। क्यों सत्तर के दशक में नवसामाजिक आंदोलन के रूप में समतामूलक समाज निर्माण के स्वप्न को लेकर उभरे स्त्रीवादी आंदोलनों की चेतना एवं उनके मुद्दों को जाने - अनजाने नजरअंदाज करने का प्रयास किया जा रहा है ?

साहित्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध विभिन्न कहानियों, कविताओं तथा आत्मकथाओं में स्त्री की दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नहीं हो पा रहा है ? स्त्री साहित्य के सवालों के मूल्यांकन के संदर्भ में भी हिंदी आलोचना में गैर - अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन का नाम दिया गया। वस्तुतः नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एंव दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य

शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ - साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। नव स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आंदोलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात स्त्री - पुरुष संबंध, लैंगिक श्रम विभाजन, आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे स्वतः ही हल हो जाएँगे परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी स्त्री - मूलक प्रश्न ज्यों के त्यों बने हुए हैं। औरत पर आर्थिक, सामाजिक यौन उत्पीड़न अपेक्षतया अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से कायम है। स्त्री आंदोलनों को इन समस्त चुनौतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा। निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य मुक्तिकामी आंदोलनों से किसी रूप में भिन्न नहीं है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति संघर्षरत है तथा एक समतामूलक समाज निर्माण हेतु प्रतिबद्ध हैं। स्त्रीवादी आंदोलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप में स्त्री अध्ययन एक अकादमिक अभिप्रयास है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास करता है। यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके वृहद् रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनी राय रखते हुए जेंडर समानता आधारित समाज के निर्माण की और अग्रसर है। अंतरविषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ ज्ञानात्मक संबंध भी कायम करता है। स्त्री प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में स्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवाद को पढ़ाया जाना अति आवश्यक है। जरूरी नहीं कि उच्च शिक्षा संस्थानों में स्त्रीवाद पढ़ने के बाद लोग स्त्रीवादी बनें ही परंतु यह संभव हो सकेगा कि ज्ञान के नए क्षितिज के रूप में वह उसके बारे में समझ रखते हों।

आमतौर पर स्त्री विमर्श के अकादमिक होने के उपरांत यह आरोप लगते रहे हैं कि इसके कारण आंदोलनों का संस्थानीकरण हुआ है एवं लोग स्त्री मुद्दों को टेक्स्ट के रूप में पढ़ने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी है परंतु धीरे धीरे ही सही स्त्री अध्ययन परंपरागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में सफल हो रहा है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहें कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म ने विमर्शों को तरजीह दे।

हिन्दी साहित्य में स्त्री - विमर्श की शुरूआत छायावाद काल से माना जाता है। महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। उसकी श्रृंखला की कड़िया ' स्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। जिसमें नारी - जागरण एवं मुक्ति का सवाल को उठाया गया है। ऐसा साहित्य जिसमें स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण हो स्त्री - विमर्श कहलाता है।

प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव तक अनेक पुरूष लेखकों ने नारी समस्या को उकेरा है। लेकिन उस रूप में नहीं जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लेखनी चलायी है। हिन्दी कथा - साहित्य में नारी - मुक्ति को लेकर स्त्री - विमर्श की गूंज 1960 ई. में पश्चिम में हुआ था । जिसमें चार नाम चर्चित है - उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी। ये नारी मन के छिपे शक्तियों को पहचाना और नारी की दिशाहीनता, दुविधाग्रस्तता, कुण्ठा आदि का विश्लेषण किया।

समाज के दो पहलू स्त्री - पुरूष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी पुरूष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। यही पक्षपात दृष्टि ने शिक्षित नारियों को आंदोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी - विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। स्त्रियों की दशा को देखकर विवेकानंद कहते है - स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है। 1 विवेकानंद जी महिला समाज की वास्तविक दशा से चिंचित, देश एवं समाज के भलाई महिला समाज के तरक्की के बगैर असंभव बताया है।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह स्वातिबूंद और खारे मोती तथा यह तुम भी जानों काफी चर्चित रहे हैं। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है

'' मां - बाप ने पैदा किया था गूंगा

परिवेश ने लंगड़ा बना दिया

चलती रही परिपाटी पर

बैसाखियां चरमराती हैं।

अधिक बोझ से अकुलाकर

विस्कारित मन हुंकारता है

बैसाखियों को तोड़ दूं। ''

उपर्युक्त कविता स्त्री - जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित कर रही है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी गद्यकार एवं कवि रघुवीर सहायजी नारी जीवन की वास्तविक चित्र खिंचा हैं, उन्होंने अपने काव्य में स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। जिस भारत में स्त्री वैदिक काल में '' यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता '' कहा जाता था आज वही अनेक शोषण का शिकार हो रही है। वह कहता है –

'' नारी बेचारी है

पुरूष की मारी

तन से क्षुदित है

लपक कर झपक कर

अंत में चित्त है। ''

प्रस्तुत पंक्ति में कविवर सहाय जी नारी को बेचारी कहकर उसकी दयनीय दशा का वर्णन किया है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ नहीं पाती। लेकिन वर्तमान में यह स्थिति परिवर्तित नजर आती है। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया। अब नारी अपनी हरेक अधिकार को लेकर रहेगी। यही लड़ाई स्त्री - विमर्श या नारी सशक्तिकरण के रूप में परिलक्षित होती है।

हिन्दी कथा साहित्य में नारी विमर्श का जोर आठवें दशक तक आते - आते एक आंदोलन का रूप ले लिया। आठवें दशक के महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय है - ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मणिक मोहनी, मृदुला गर्ग, मुदुला सिन्हा, मंजुला भगत, मैत्रेयी पुष्पा, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, दिप्ती खण्डेलवाल, कुसुम अंचल, इंदू जैन, सुनीता जैन, प्रभाखेतान, सुधा अरोड़ा, क्षमा शर्मा, अर्चना वर्मा, नमिता सिंह, अल्का सरावगी, जया जादवानी, मुक्ता रमणिका गुंप्ता आदि ये सभी लेखिकाओं ने नारी मन की गहराईयों, अन्तद्र्वन्द्वों तथा अनेक समस्याओं का अंकन संजीदगी से किया है।

स्त्री की दशाओं पर अनेक समाज सुधारकों ने चिन्ता व्यक्त किया और यथा सम्भव दूर करने का प्रयास भी। जिससे नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोयायटी, रामकृष्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनों ने नारी शिक्षा पर जोर दिया, जिसका सकारात्मक परिणाम आया। वंदना वीथिका के शब्दों में - " नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनकी अशिक्षा थी और उनकी परतंत्रता का प्रमुख कारण उनकी आर्थिक स्वतंत्रतता का अभाव था। आज स्थिति परिवर्तित हुई है। आज हर क्षेत्र का द्वार लड़कियों के लिए खुला है। वे हर जगह प्रवेश पाने लगी हैं - जमीं से आसमां तक - पृथ्वी से चांद तक (कल्पना चांवला, सुनिता विलियम) उनकी पहुंच है। "

आज स्त्री समाज सभी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी निभा रही है। राजनीतिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक उसके बाद भी यह लड़ाई क्यों ? लेकिन सवाल तो यह है कि वह पुरूष की भांति स्वतंत्रता चाहती है। इसीलिए पितृसत्ता का विरोध कर पारम्परिक बेड़ियों को तोड़ना चाहती है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्रीवादी विचार को पनपने का सुअवसार मिला। भूमण्डलीकरण ने अपने तमाम अच्छाईयों एवं बुराईयों के साथ सभी वर्ग के शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसार दिया। परिणामस्वरूप स्त्री अपने वर्जित क्षेत्रों में ठोस दावेदारी की और स्वाललम्बन के दिशा में तीव्र प्रयास भी सामने आए।

स्त्री - विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की संकल्पना है। स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। डॉ. संदीप रणभिरकर के शब्दों में - " स्त्री - विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतन ने ही स्त्री - विमर्श को जन्म दिया है। "

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है। लेकिन आज की नारी चेतनशील है जिसे अच्छे - बुरे का ज्ञान है। इसीलिए अब इस व्यवस्था का बहिष्कार कर स्वच्छंदात्मक जीवन जीने को आतुर दिखाई पड़ती है। नारी अस्तित्व को लेकर अपने - अपने समय पर कई विद्वानों ने चिन्ता व्यक्त किया है। तुलसीदास जी ने " ढ़ोल गवार, शूद्र, पशु, नारी - सकल ताड़ना के अधिकारी " कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है तो मैथलीशरण गुप्त जी ने " अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी " कहकर नारी के स्थिति पर चिन्ता व्यक्त किया है। प्रसाद ने " नारी तुम केवल श्रद्धा हो " कहा है तो शेक्सपियर ने " दुर्बलता तुम्हारा नाम ही नारी है " आदि कहकर नारी अस्तित्व को संकीर्ण बताया है।

अब स्थिति कुछ बदली हुई नजर आती है। क्योंकि छठे शताब्दी के पहले तक सिर्फ पुरूष लेखकों का अधिकार था, महिला लेखन को काऊच लेखक कहकर हंसी उड़ाया जाता था। परन्तु अब स्त्री - विमर्श का डंका इसलिए बज रहा है क्योंकि आठवें दशक तक आते - आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी। उसके बाद भी प्रसिद्ध लेखिका सीमोन द बोउआर के उक्त कथन महिला समाज में परिलक्षित होती है - " स्त्री की स्थिति अधीनता की है। स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की है तो बस उतनी ही जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है। "

नारी मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनः स्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ है। " साठ के दशक और उसके संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास है। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो समाज के विविध क्षेत्र में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था। "

हिन्दी कथा लेखिकाओं ने अपने - अपने लेखन में नारी मन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। अमृता प्रीतम के रसीदी टिकट, कृष्णा सोबती - मित्रों मरजानी, मन्नू भण्डारी - आपका बंटी, चित्रा मुद्गल - आबां एवं एक जमीन अपनी, ममता कालिया - बेघर, मृदुला गर्ग - कठ गुलाब, मैत्रेयी पुष्पा - चाक एवं अल्मा कबूतरी, प्रभा खेतान के छिन्नमस्ता, पद्मा सचदेव के अब न बनेगी देहरी, राजीसेठ का तत्सम, मेहरून्निसा परवेज का अकेला पलाश, शशि प्रभा शास्त्री की सीढ़ियां, कुसुम अंचल के अपनी - अपनी यात्रा, शैलेश मटियानी की बावन नदियों का संगम, उषा प्रियम्वदा के पचपन खम्बे, लाल दिवार, दीप्ति खण्डेलवाल के प्रतिध्वनियां आदि में नारी संघर्ष को देखा जा सकता है। डॉ ज्योति किरण के शब्दों में - " इस समाज में जब स्त्रियां अपनी समझ और काबलियत जाहिर करती हैं तब वह कुलच्छनी मानी जाती हैं, जब वह खुद विवेक से काम करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए जब वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती हैं और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब परिवार और समाज के लिए वह चुनौती बन जाती है। "

ज़रूरी है हिंदी स्त्री विमर्श के नए आयाम की तलाश

हिंदी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है | उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बाँधने की | कला

साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरुरी है | यहाँ तक कि स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरुरी है |

जैसे 16 दिसम्बर की घटना के बाद आने वाली वर्मा कमेटी की रिपोर्ट ऐसे ही परिवर्तनों का परिणाम है | जहाँ तक हिंदुस्तान में संस्कृति को बदलने की लड़ाई के शुरू होने की बात है तो वह उसी दिन से शुरू हो गई होगी जिस दिन पहली स्त्री ने अपने अधिकारों की माँग करके वर्चस्वशाली संस्कृति के समक्ष प्रतिरोधात्मक संस्कृति की शुरुआत की होगी | हम नहीं जानते कि वह स्त्री कौन थी या उसकी माँग क्या थी ! हो सकता है उसकी पहली लड़ाई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर ही रही हो ! १६ दिसम्बर की घटना के बाद उठने वाला आन्दोलन सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए संघर्षो के लम्बे इतिहास का एक बड़ा अध्याय है और इस अध्याय का इस रूप में लिखा जाना तभी संभव हो सका जब उसकी एक मजबूत पृष्ठभूमि निर्मित हो चुकी थी | चाहे मथुरा रेप केस रहा हो या माया त्यागी रेप केस या मनोरमा देवी रेप केस रहा हो, यहाँ के पुरुषवादी सत्ता - विमर्श की विद्रूपता को दिखाने के लिए ऐसे हजारों नाम लिए जा सकते हैं और उनके विरोध में उठने वाले छोटे से छोटे स्वर को भी सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रतिरोध माना जाना चाहिए |

महिला लेखिकाओं की लड़ाई डाॅ जयोति किरण की उपर्युक्त गद्यांश में देखी जा सकती है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारी आदिकाल से ही पीड़ित एवं शोषित रही है पुरूष प्रधान समाज मान मर्यादा के आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा। कभी घर का इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारों के अन्दर कैद ही रखा। इन्हीं परम्परागत पित्सत्तात्मक बेड़ियों को लांघने की लड़ाई है स्त्री - विमर्श।[18]

संदर्भ

[1] डॉ॰ यादव वीरेंद्र सिंह, हिंदी कथा साहित्य में पारिवारिक विघटन, वर्ष (2010), नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

[2] डॉ॰ मिश्र रवीन्द्रनाथ, इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना, वर्ष (2011), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

[3] शर्मा यादवेंद्र 'चंद्र', वाह किन्नी, वाह (कहानी संग्रह), वर्ष (2009), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

[4] अनीता गोपेश, कित्ता पानी (कहानी संग्रह), वर्ष (2009), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

[5] जैमिनी अंजु दुआ, क्या गुनाह किया (कहानी संग्रह), वर्ष (2007), कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली

[6] जैमिनी अंजु दुआ, सीली दीवार (कहानी संग्रह), वर्ष (2002), अनुभव प्रकाशन, साहिबाबाद

[7] शर्मा गोपालकृष्ण 'फिरोजपूरी', मोम के रिश्ते (कहानी संग्रह), वर्ष (2011), कल्पना प्रकाशन, दिल्ली

[8] शर्मा यादवेंद्र 'चंद्र', वाह किन्नी, वाह (क॰सं॰), पृ॰ 128 ↑

[9] वहीं पृ॰99 ↑

[10] शर्मा यादवेंद्र 'चंद्र', वाह किन्नी, वाह (क॰सं॰), पृष्ठ 44 ↑

[11] गोपेश अनीता, कित्ता पानी (क॰सं॰), पृ॰ 53 ↑

[12] पृ॰ 53 ↑

[13] वहीं शर्मा, यादवेंद्र 'चंद्र', वाह किन्नी,वाह (क॰सं॰), पृ॰ 94, ↑

[14] वहीं, पृ॰ 94 ↑

[15] शर्मा गोपालकृष्ण 'फिरोजपूरी', मोम के रिश्ते (क॰सं॰), पृ॰ 34 ↑

[16] जैमिनी अंजु दुआ, सीली दीवार (क॰सं॰), पृ॰ 28 ↑

[17] जैमिनी अंजु दुआ, क्या गुनाह किया (क॰सं॰), पृ॰ 27 ↑

[18] वहीं, पृ॰ 29 ↑